प्रथम अध्याय

"नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

प्रथम अध्याय

“नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व”

1.1 प्रस्तावना।

1.2 व्यक्तित्व का अर्थ और स्वरूप।

1.3 नागार्जुन का व्यक्तित्व -

1.3.1 जन्म, बचपन, माता-पिता, परिवार, शिक्षा, नौकरी, विवाह, संतान

1.3.2 नागार्जुन का अंतरंग व्यक्तित्व - खान-पान, रूचि, स्वभाव-विशेषता।

1.4 नागार्जुन का कृतित्व -

1.4.1 उपन्यासकार नागार्जुन।

1.4.2 कहानीकार नागार्जुन।

1.4.3 कवि नागार्जुन।

1.5 प्राप्त पुरस्कार।

निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

"नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

1.1 प्रस्तावना :-

नागार्जुन हिन्दी साहित्य के प्रतिभासंपन्न साहित्यकार है। उन्होंने हिन्दी साहित्य में काव्य और उपन्यास इन दो महत्त्वपूर्ण विधाओं में अपनी कलम का जादू चलाया है। इन दोनों में उपन्यासकार का रूप अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आँचलिकता के जनक एवं समाजवादी यथार्थवाद के प्रबल समर्थक है।

"जब कभी मैं ग्रामांचलों के किनारे-किनारे बसी हुई दलित बस्तियों के अन्दर अथवा महानगरों के पिछवाडे गन्दी नालों के इर्द-गिर्द बसी हुई झुग्गियों की दुनियाँ में जाता हूँ तो सुविधा प्राप्त वर्गो द्वारा परिचालित राजनीति के प्रति मेरा रोम-रोम नफ़रत की आग से सुलग उठता है।"[1] ये शब्द हिन्दी के एक ऐसे सशक्त रचनाकार के है जिनका न केवल साहित्य बल्कि संपूर्ण जीवन क्रांति की लहरों से उद्वेलित है। नागार्जुन चाहे नगर में रहे या महानगर में, उस ग्रामों में रहनेवाले गरीब, प्रताड़ित, शोषित जन को नहीं भूले। अपनी अकेली मुडी-तुडी काया से वामन की तरह सम्पूर्ण पीड़ित मानवता के दु:ख-दर्द को माप लेना चाहते हैं। वे शब्दों को सिर्फ लिखते नहीं है, न खेलते है, बल्कि शब्दों के पीछे छिपे जीवन को गहराई के साथ महसूस करते हैं, उसको जीते है। आधी शताब्दी से अधिक समय से सृजनरत नागार्जुन का रचनाकार व्यक्तित्व विविधतापूर्ण और बहुआयामी है। अपनी साहित्य यात्रा में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्त्रोतों से जो प्रेरणा मिली वही उनकी रचना की नींव बनती गयी। नागार्जुन जिन स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण करते है, वह न केवल रचना के लिए बल्कि उनके व्यक्तित्व निर्माण के लिए भी प्रेरक सिद्ध हुओ। वे किसी को भी अपना प्रेरक मानने की भूल नहीं करते, न ही वे इसके लिए संकिर्ण मानदण्डों को स्वीकार करते है। नागार्जुन के प्रेरणा स्त्रोत प्राचीन और समकालिन दोनों रूपों में उलपब्ध है।

नागार्जुन का अध्ययन करने के पश्चात हमें ज्ञात हुआ, उनका लेखक बराबर पीड़ित लोगों के बीच घुलमिल रहा है, उनके दु:ख-दर्द को पोंछना, सहलाता, पोथी पढ़ा अनुभव नहीं है बाबा का अपने और जन से प्राप्त अनुभूति है, जिसके बीच से ही उनका साहित्यकार अपनी शैली तलाशता है। उन्होंने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्या को गहराई से, अनुभव से अपनी रचनाओं में ढॉला है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष का चित्रण कर पूँजीपतियों एवं उच्च वर्ग के प्रति

निम्न वर्ग के विद्रोह को जगाया है। अत्याचार, उत्पीडन और शोषण आदि के यथार्थ चित्र उनके उपन्यासों में हावी है। वे वर्तमान शासन प्रणाली से संतुष्ट नहीं है। उन्हें राजनीतिक नेता तथा उनके व्यवहारों से खीज है। नारी के प्रति उनकी बडी आस्था है। समाज में नारी उच्च है, ऐसा उनका मानना है। वे नारी को जीवन के हर क्षेत्र में आगे लाना चाहते है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक अंधविश्वासों का खंडन-मण्डन किया है। उन्हें कृषक तथा मजदूर, गरीब जन से लगाव है। वे किसान आन्दोलनों को चित्रित करना चाहते है। वे कृषक वर्ग के उपर हो रहे अत्याचार, निरंतर प्रताड़ना का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में करते है। उन्होंने उनकी दयनीय स्थिति एवं कारणों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने युगों से दलित, पीड़ित लोगों की अपने साहित्य में साफ तस्वीरे खींचकर उनका शोषण करनेवाली ताकतों को बेनकाब किया है। इसी कारण उनके साहित्य की धार अधिक पैनी और तीखी होती चली गई।

नागार्जुन रूस की समाजवादी आर्थिक विचारधारा से अधिक प्रभावित है। उनके उपन्यासों के पात्र कर्म को ही सबसे बडा 'धर्म' मानते है। उनके यह पात्र अंत तक हार नहीं मानते। कितनी भी समस्याएँ, संकट, तूफान से झूँझने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। यह उनके उपन्यासों के पात्रों की विशेषता रही है।

नागार्जुन ने अपने साहित्य में समाज के विभिन्न अंगों और उनकी विचारधारा का जो रूप उद्घाटित किया वह व्यवस्थित एवं वैविध्यपूर्ण है। उनके साहित्य को जितना भी जान-समझकर पुस्तक में उतारने का प्रयास करे कुछ ना कुछ छूटने की संभावना रहती इसका एकमात्र कारण है - बाबा नागार्जुन तो सतत प्रवाहमान जीवनधारा के स्त्रोत है, जो कभी सूखता नहीं है।

1.2 व्यक्तित्व का अर्थ और स्वरूप :-

'व्यक्तित्व' शब्द हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के 'पर्सनेलिटी' शब्द का पर्यायवाची माना गया है। लैटिन भाषा 'पर्सोना' शब्द से 'पर्सनेलिटी' की उत्पत्ति मानी जाती है। 'पर्सोना' शब्द का मूलत: नाटक में पात्रों द्वारा धारण किए नकली चेहरों के लिए होता था। व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति का बाह्याकार एवं अंतर्मन की वृत्तियों से है। हमारी राय से व्यक्तित्व वह इकाई है, जिसके द्वारा एखाद व्यक्ति का परिचय किया जाता है, अथवा व्यक्तियों को पहचाना जाता है। जिसमें व्यक्ति का सोचना, लिखना, जीवनयापन का तरीका, रहन-सहन, मनोवृत्तियाँ तथा आदतें, संस्कार, शारीरिक ढाँचा और वेशभूषा आदि व्यक्ति के गुणों का समावेश होता है।

1.3 नागार्जुन का व्यक्तित्व :-

व्यक्ति और साहित्य दो भिन्न नहीं है। किसी भी साहित्यकार का जीवन, मान्यता, भाव-भावना का प्रतिबिंब उनके साहित्य में दिखाई देता है। इसलिए साहित्यकार के कृतित्व को देखने से पहले व्यक्तित्व पर सोचना अनिवार्य है। व्यक्तित्व में परिवार, समाज, परिवेश का चित्रण होता है। व्यक्तित्व में व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है। उनकी आदतें, रूचियाँ, मनोवृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ, विशेषताओं का अंकन होता है। व्यक्तित्व और साहित्य अछूत नहीं होते अत: नागार्जुन का व्यक्तित्व भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उस पर यहाँ हम विचार करेंगे। हिन्दी साहित्य में 'बाबा' के नाम से लोकप्रिय और मैथिली के प्रख्यात कवि और कथाकार 'नागार्जुन' का पूरा नाम है श्री वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री'। लेखकों, मित्रों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं में 'नागा बाबा' संस्कृत में 'चाणक्य' जैसे सम्मानसूचक नाम से पुकारे जानेवाले इस साहित्यकार का स्वभाव विद्रोही था। उन्हें घर के लोग 'ढक्कन मिसिर' नाम से पुकारते थे। इनसे पूर्व चार भाई-बहनों का शैशवकाल में ही देहान्त हो चुका था। अत: इनके पिता ने वैद्यनाथ धाम (देवधर) जिला संथाल परगना में जाकर पुत्र के दिर्घायु होने की मिन्नत की इसी के फल स्वरूप इनका नाम वैद्यनाथ रखा गया।

1.3.1 जन्म :-

नागार्जुन के जन्मतिथि के बारे में विद्वानों में मतभिन्नता है। "हिन्दी साहित्य कोश में उनका जन्म सन 1910 दिया गया है।"[2] डॉ. प्रकाशचंद्र भट्ट ने "उनका जन्म 1911, 30 जून मास की किसी तिथि (जेष्ठ मास की पूर्णिमा) को माना है।"[3] डॉ. ज्ञानेशदत्त हरित ने भी अपने प्रकाशित शोध-प्रबंध 'नागार्जुन - व्यक्तित्व और कृतित्व' में सन 1911 को ही जन्म माना है। प्रा. अर्जून जानू घरात ने नागार्जुन का जन्म 1911 में जेष्ठ मास की पूर्णिमा को ही माना है। इसी तरह नागार्जुन की जन्मतिथी का कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। नागार्जुन ने स्वयं भी सन 1911 में ही अपना जन्म ननिहाल के ग्राम सतलखा, पोस्ट मधुबनी, दरभंगा शहर से दस-पंद्रह मील पूरब में तरौनी है वहाँ एक संस्कृत पंडित घराने में हुआ था।

❋ बचपन :-

नागार्जुन के बचपन में ही माँ का देहावसान हो गया था। अपने नाना के यहाँ से महिषी ग्राम में मिली भू-सम्पत्ति की देखभाल के लिए वहाँ जाकर बसने के साथ पिता श्री गोकुल मिश्र के साथ बालक वैद्यनाथ मिश्र का बचपन बीता। बचपन में उन्हें 'ढक्कन' कहकर पुकारते थे। कोसी नदी

की छोटी सी शाखा घेमुड़ा नदी के किनारे बसा हुआ यह गाँव कवि, कथाकार नागार्जुन की बचपन की स्मृतियों का केन्द्र रहा है।

❋ परिवार :-

नागार्जुन के पिता का नाम गोकुल मिश्र था तथा माता का नाम उमादेवी था। उमादेवी सरल प्रकृति की ग्रामीण महिला थी। नागार्जुन के जन्म के पूर्व चार भाई-बहनों का शैशवकाल में ही देहांत हो चुका था। नागार्जुन की चार वर्ष की अवस्था में ही माँ चल बसी। इस प्रकार मातृहीन बालक पर अपने घुमक्कड पिता का प्रभाव पडा, जिससे इन्होंने भी आगे चलकर यायावरी जीवन ही अपनाया। तेरह वर्ष की आयु के बाद नागार्जुन घर के प्रति बिलकुल उदास हो गये वे, विद्रोही प्रवृत्ति के बने।

❋ शिक्षा :-

नागार्जुन की आरम्भिक शिक्षा गाँव की संस्कृत पाठशाला में हुई। उनका बचपन निम्न वर्ग के लोगों के साथ बिता है। बालक नागार्जुन के हृदय में इसी कारण गरीबों के प्रति करूणा उत्पन्न हो गई। इसके फलस्वरूप उनके उपन्यासों में निम्नवर्ग और गरीब जनता का चित्रण मिलता है। वे निम्न जाति के हम उम्र ब्राह्मण के साथ खेला करते थे, और उच-नीच तथा बाह्य आडम्बरों आदि का उन्होंने सदैव विरोध किया है।

नागार्जुन ने संस्कृत का गहन अध्ययन किया। साहित्यशास्त्र में आचार्य तक पढ़े। व्याकरण का अध्ययन उन्होंने काशी संस्कृत विद्यालय से चार साल पढ़कर किया। फिर एक साल पचगछिमार (जिला सहरसा) और एक साल कलकत्ता रहे। संस्कृत भाषा में अनुष्वसन्ततलिका, पृथ्वी, शिखरिणी आदि छंदों का अध्ययन किया। इस सिलसिले में उनके गुरू री अनिनरूद्ध मिश्र ने बहुत बडी मदत की। नागार्जुन पाली भाषा तथा बौद्ध-दर्शन के अध्ययन के लिए केलानिया (श्रीलंका) में ही रहे। उन्होंने कलकत्ता में संस्कृत महाविद्यालय में पंद्रह रूपये की छात्रवृत्ति पाई, छात्रावास में मुक्त आवास में अध्ययन भी किया था। नागार्जुन लगभग दो वर्षों तक लंका में रहे। यहाँ का सारा समय अध्ययन एवं अध्यापन में बिताया।

❋ नौकरी :-

नागार्जुन की नौकरी के संदर्भ में उनके पिता का कथन है, ''यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ, हाट बजार में जाकर दस-बीस किताबियाँ जरूर बेच आऊँगा। अपना तम्बाकू और घी सब्जी का

खर्च चलेगा। बहू यही करेगी। तुम बाहर चले जाओ, अच्छी भली नौकरी ढूँढ लो।''[4] इसी प्रकार नागार्जुन ने काव्य तीर्थ की उपाधि का अध्ययन पूरा किये बिना ही सन 1934 में सहारनपुर में सौ रूपये मासिक वेतनपर प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद किया करते थे। परंतु एक वर्ष काम करने के बाद यह पद उन्होंने छोड दिया। जीविका चलाने के लिए वे पंजाब में एक पत्रिका 'दिपक' का संपादन करने लगे। श्रीलंका में अध्यापन का काम भी किया है।

⁂ विवाह :-

नागार्जुन का विवाह उन्नीस वर्ष की आयु में अपराजिता देवी से हुआ। उनके हृदय में पत्नी के प्रति सदैव सहानुभूति के भाव रहे, वे अपनी पत्नी को प्यार से 'अपू' कहकर संबोधित करते थे, फिर भी अपनी यायावरी वृत्ति के कारण यथोचित स्नेह, प्यार अपनी पत्नी को न दे सके।

⁂ संतान :-

नागार्जुन को चार पुत्र और दो पुत्रियाँ है। पुत्र शोभाकांत, सुकांत, श्रीकांत और श्यामाकांत और पुत्रियाँ उर्मिला और मंजू है। आर्थिक परिस्थिति के कारण उनकी संतानें उच्चशिक्षा से वंचित रह गयी है।

मृत्यु :-

साहित्य की यात्रा करते-करते, पारिवारिक आपदा सहते हुए बीमारी के कारण नागार्जुन कमजोर बने। अत: उनकी जीवन यात्रा 5 नवंबर 1998 में समाप्त हो गयी। भौतिक संसार से नागार्जुन चल बसे, परंतु साहित्य जगत में अपनी अनमोल रचना के कारण सदा याद रहेंगे। सामान्य जनों का साहित्यकार आम आदमी के दिल पर राज करता रहेगा, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

⁂ बाह्य व्यक्तित्व :-

नागार्जुन की रहन-सहन सीधी-साधी थी और विचार उच्च थे। नागार्जुन के बाह्य व्यक्तित्व में कुछ भी ऐसा नहीं था जो कि उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके। उनका साधारण मझोला कद तथा वर्ण श्याम है। वे मोटे खद्दर का कुर्ता तथा पजामा पहनते है। किसी भी प्रकार का दिखावा उन्हें पसन्द नहीं था। वे एक साधारण मनुष्य का जीवन व्यतित करते थे। उनके बाह्य पक्ष के बारे में डॉ.प्रकाशचंद्र भट्ट के शब्दों में, ''दुबला-पतला शरीर, मोटे खद्दर का कुर्ता, पजामा, मझोला कद, आँखों पर ऐनक, पैरों में चप्पले, चेहरे पर उत्साह और पीड़ित वर्ग के प्रति व्यथा की मिली-जुली प्रतिक्रिया के भाव यहीं नागार्जुन है।''[5] यही सत्य है। उनका खान-पान अत्यंत सादा था। वे शुध्द

शाकाहारी थे। शोषित और पीड़ित जन के हिमायती। भ्रष्टाचार, राजनैतिक, धड़ेबाजी, आडम्बर और साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठानेवालों में नागार्जुन के व्यक्तित्व में सहजता और फक्कड़पन का जो भाव मिलता है, वह अन्यत्र कम ही मिलेगा।

1.3.2 अंतरंग व्यक्तित्व :-

नागार्जुन के अंतरंग व्यक्तित्व निर्माणिक तत्वों में तत्कालीन, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ मुख्य रही हैं जिसकी प्रतिक्रिया उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखी जा सकती है। ''जीवन की सादगी, सरलता, स्पष्टवादिता और खुलापन नागार्जुन के व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष की मूलभूत विशेषताएँ है।''[6] बचपन से ही विद्रोही और परम्परा भंजक के संस्कार उन पर थे। एकांत प्रेमी, स्वाभिमानी, आडम्बर और प्रदर्शन से बेहद नफरत आदि मूलभूत विशेषताएँ है। सहज जीवन के चितेरे नागार्जुन अपने व्यक्तिगत जीवन में जितने सहज तरीके से जीवन जीते है साहित्य में भी वह उतनी ही सहजता से अभिव्यक्त हुआ है।

समाज में व्याप्त वर्गभेद, जातिभेद, शोषण, उत्पीड़न ने उनकी सोचने की प्रक्रिया को अधिक तीव्र किया, इसी काम में कई बार उन्हें जेल भी जाना पडा। लेकिन वे जनहित के लिए अपने पथ से कभी नहीं हिले। नागार्जुन के व्यक्तित्व को निखारने में उनके व्यक्तिगत जीवन के कटु संघर्षों के अलावा उस प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचार धन का योग भी है। जिनकी प्रारंभिक दिक्षा उन्हें स्वामी सहजानंद से मिली जिसके फलस्वरूप उनमें अदम्य जिजीविषा पैदा हुई तो सामाजिक व्यवहार ने उन्हें जन-सामान्य के अधिक निकट खडा किया।

सादे जीवन एवं परिवेश तथा प्रगतिशील विचारधाराने नागार्जुन के दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की। सामान्यज ने के प्रति पक्षधरता इनके सम्पूर्ण साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। नागार्जुन की सबसे बडी विशेषता हैं कि वे अनेक विविधताओं और सम्पन्नताओं के रचनाकार है। ''ऐसा क्यों है कि हिन्दुस्थान के हर पड़ाव पर एक न एक नागार्जुन नजर आता है। यह सपने की बात नहीं, सच्चाई है कि बाबा नागार्जुन यहाँ की माटी में, यहाँ के जनसाधारण में कि इनको कहीं भी देखा जा सकता है।''[7] यहाँ पर स्पष्ट है कि नागार्जुन का व्यक्तित्व बहुत समृद्ध था।

1.4 कृतित्व :-

उपन्यासकार नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभासंपन्न, अनेक विविधताओं और सम्पन्नताओं के सजग रचनाकार है। उन्होंने उपन्यास, काव्य, आलोचना, निबंध, अनुवाद, बालसाहित्य आदि

साहित्यिक विधाओं में कलम से अपना प्रभाव बनाया है। हिन्दी, मैथिली और संस्कृत भाषाओं में उन्होंने साहित्य सृजन किया है। उन्हें साहित्य की ओर रूचि बचपन से ही रही है। ''नागार्जुन की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'राम के प्रति' कविता सन 1939 में 'विश्व बंधु' साप्ताहिक (लाहोर) में छपी। इसी समय मैथिली में उनकी कुछ कविताएँ और उपन्यास प्रकाशित हुए। मैथिली की प्रथम प्रकाशित रचना 'मिथिला' (मासिक लहोरिया सराय) में 1930 में छपी थी। मैथिली और संस्कृत से लेखन आरम्भ कर नागार्जुन हिन्दी साहित्य में अवतरित हुए।''[8] हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण से पूर्व नागार्जुन की 'यात्री' नाम से लिखी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थी। साहित्य सदन, आबोहर (पंजाब) से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'दीपक' का उन्होंने 1935 में सफलतापूर्वक संपादन किया।

1.4.1 उपन्यासकार नागार्जुन :-

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नागार्जुन का अपना विशिष्ट स्थान है। हिंदी उपन्यास में समाज के यथार्थ रूप का चित्रण प्रेमचंद युग से प्रारंभ हुआ। प्रेमचंद की इसी परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य नागार्जुन ने किया। निम्नवर्गीय समाज की वेदनाओं और उनकी समस्याओं के चितेरे नागार्जुन ने अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया है। ग्रामीण जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति इनकी विशेषता रही है। इनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों में स्थित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के अलावा तत्कालीन जनजीवन, पूँजीपतियों द्वारा होनेवाला शोषण, जमींदार-किसान संघर्ष एवं प्राकृतिक चित्रण का अंकन हुआ है। नागार्जुन मार्क्सवादी विचारों के समर्थक रहे हैं, लेकिन उन्होंने अपने साहित्यिक कृतियों में मार्क्स सिद्धांतों का प्रयोग नहीं किया। यह एक उनकी विशेषत: रही है। इसके संदर्भ में ललित अरोरा का कथन है - ''उनके सारे रचनासंसार में अन्तसूत्र की तरह क्लासिकी मार्क्सवाद अवश्य मौजूद है। वह भी उनके बौद्ध दर्शन के अध्ययन संस्कारों के कारण करूणा, मैत्री और शान्तिप्रियता की मानववादी अन्त:धारा से बराबर सौम्य बनता गया है। आज नागार्जुन को किसी भी राजनीतिक पक्ष या मतवाद के 'लेबल' से परिभाषित करना कठीन है। वे दलित शोषित वर्ग के सच्चे हितैषी है।''[9] इस प्रकार सच्चे अर्थों में पीड़ित, शोषित, दलित जनता के प्रतिनिधि नागार्जुन मानवता के सजग प्रहरी है।

नागार्जुन समाजवाद और जनतंत्र दोन्हों में विश्वास रखते है। डॉ. त्रिभुवनसिंह के शब्दों में, ''समाजवादी यथार्थवाद को आदर्श मानकर लिखनेवाले उपन्यासकारों में नागार्जुन एक विशिष्ट

स्थान रखते है, साथ ही आँचलिक उपन्यासों के प्रवर्तकों में भी वे अगली पंक्ति में बैठने के अधिकारी है।''[10] डॉ.नगेंद्र कहते है - ''जहाँ तक विषय वस्तु के चुनाव का सम्बन्ध है, वे प्रेमचंद की परम्परा में आते है पर दृष्टि बिन्दु के हिसाब से वे यशपाल की परम्परा के लेखक है, किन्तु इन दोनों को समन्वित करना कठीन हो गया है। इसलिए उनकी औपन्यासिकता स्तरित नहीं होती, जबकि नागार्जुन का मार्क्सवादी दृष्टिकोन गौण की थीम पर आरोपीत प्रतीत होता है। उनके उपन्यासों के कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार चलता है। फलत: उपन्यासों की सृजनात्मकता शिथिल तथा अवरूद्ध हो गयी है।''[11]

आँचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणू के पश्चात नागार्जुन का नाम लिया जाता है। परंतु सत्यता यह है कि, उनका 'रतिनाथ-चाची' जिसमें मिथिला अंचल के तालाबों, पशुओं, पंच्छियों, खेतों, वहाँ के ग्राम जीवन को उनकी समग्रता के साथ अपने निजी अनुभवों के आधार पर रेणू के 'मैला आँचल' के पूर्व याने 1948 में अभिव्यक्त कर चुके थे। इस प्रकार नागार्जुन को ही प्रथम आँचलिक उपन्यासकार के रूप में माना जा सकता है। नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में मिथिला का ग्रामजीवन, वहाँ के लोग, उनकी रहन-सहन, व्यवसाय, बोली, उत्सव-पर्व, रीति, परंपरा, सदाचार, ईर्ष्या, द्वेश, पेहराव, देवी-देवता आदि सभी का चित्रण मिलता है। इसके अलावा वहाँ की राजनीतिक पृष्ठभूमि आदि का भी चित्रण मिलता है। उनके पात्रों के चरित्र में स्वाभाविक विकास तथा पात्रों के पारस्पारिक संघर्ष को यथार्थ रूप से दिखाया है। जिनके पास मेहनत करने के बावजूद ओढने पहने को कपड़ा नहीं और खाने को अनाज नहीं। मात्र साहूकारों के चन्द रूपये लिए होते है उन पैसों का ब्याज अदा करते-करते पूरी जिन्दगी गुजर जाती है। 'रतिनाथ की चाची' का कुल्ली राऊत और 'बलचनमा' में बलचनमा के पिता ऐसे ही पात्र है और आजीवन जमींदारों की जूठन खाकर उनकी उतरन के कपडे पहनकर जीने के लिए विवश है।

नागार्जुन के यह सभी पात्र 'रतिनाथ की चाची' का कुल्ली राउत, बलचनमा, 'वरूण के बेटे' में खुटकुल, गौनड़, 'दु:खमोचन' में हरसू की माँ, 'बाबा बटेरसनाथ' के श्रमिक आदि आज भी समाज में पिसते हुए देखे जा सकते हैं। इन सभी के जीवन अभावग्रस्त तथा दयनीय है। डॉ. ज्ञानचंद गुप्त के अनुसार, ''उनके उपन्यास एक विशिष्ट अर्थ में ही आँचलिक है। उनकी कथा एक अंचल से तो ली जाती है लेकिन आँचलिक उपन्यासों की भाँति उनमें एक विशिष्ठ भूभाग की समूची संशिष्ठ जिन्दगी की अभिव्यक्ति नहीं होती है।''[12] नागार्जुन के उपन्यासों में उपन्यासकला का कथा-गठन

तथा औपन्यासिक सर्जनात्मकता प्रभावी रूप में प्रकट हुई है। डॉ. सुषमा धवन ने इस संदर्भ में लिखा है, ''नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित जीवन भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, वरन एक क्षेत्र विशेष पर आधारित होने के कारण आपकी रचनाएँ आँचलिक उपन्यास की कोटी में परिगठित की जाती है। इन उपन्यासों का परिवेश विस्तृत होने की अपेक्षा अधिक गहन होता है। निम्न तथा मध्यम वर्ग के जीवन खंडों के अलग-अलग चित्र भिन्न-भिन्न उपन्यासों में मिलता है।''[13]

नागार्जुन के उपन्यासों की यही सबसे बडी विशेषता हैं कि उन्होंने अपने उपन्यासें में मात्र बौद्धिकता या सैद्धातिकता का समावेश न करके अपनी लेखनी द्वारा समाज के यथार्थ जीवन को प्रामाणिक अनुभूतियों द्वारा प्रतिष्ठित किया है। अत: नागार्जुन की औपन्यासिक कृतिया कुछ इस प्रकार है -

1) रतिनाथ की चाची (1948)
2) बलचनमा (1952)
3) नई पौध (1953)
4) बाबा बटेसरनाथ (1954)
5) दु:खमोचन (1957)
6) वरूण के बेटे (1957)
7) कुम्भीपाक (1960)
8) हीरक जयन्ती (1961)
9) उग्रतारा (1963)
10) इमरतिया (1969)
11) पारो (1975)

❊ रतिनाथ की चाची :-

सन 1948 में प्रकाशित नागार्जुन का यह पहला उपन्यास है। इसमें लेखक स्वयं भी कहीं शामिल है इसलिए यह अधिक विश्वसनीय और यथार्थ के निकट है। इस उपन्यास में मैथिल समाज का यथार्थ और प्रामाणिक चित्रण मिलता है। नागार्जुन का पहला आँचलिक उपन्यास है। गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में , ''आँचलिक संज्ञा का आविष्कार रेणू द्वारा उनके 'मैला आँचल' की भूमिका में हुआ था किन्तु इसी परम्परा का सूत्रपात इससे पूर्व नागार्जुन द्वारा हो चुका था।''[14] तो शंभू सिंह का कथन है - ''नागार्जुन का प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास और नागार्जुन हिन्दी के प्रथम आँचलिक उपन्यासकार है।''[15]

प्रस्तुत उपन्यास में रतिनाथ की चाची, गौरी एक विधवा ब्राह्मणी है। अपने देवर की वासना की शिकार गौरी को किस तरह समाज द्वारा प्रताड़ना सहनी पडती है,उसके दु:खों को सुनने के लिए कोई तैयार नहीं, स्वयं उसका बेटा भी उससे घृणा करता है। विधवा गौरी का अपने विधुर

देवर जयनाथ द्वारा वैधव्य जीवन खंडित होता है। उसके कोख में जयनाथ का बच्चा पलता है। वह स्वयं बदनामी की आग में जल कर भी जयनाथ के नाम को कलंकित नहीं करती। यहाँ हमें नारी शोषण का चित्र स्पष्ट रूप में दिखाई पडता है। उसकी माँ गौरी का गर्भ एक चमाईन द्वारा गिरा देती है। लेकिन यह सब गरीब और छोटी जातिवालों को ही सहना पड़ता है। बडी जातवालों के तो सभी दोष और कुकर्म छिप जाते है। चमाईन कहती है - "एक बात कहती हूँ माफ करना बडी जातवालों की तुम्हारी यह बिरादरी बडी बिरादरी में किस जिसके पेट को आठ-आठ नौ-नौ महिने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। और, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों को मइया री मइया।"[16] ग्रामीण जीवन से नागार्जुन घुलमिल गये है, उन्हें देहाती जीवन का गहरा अनुभव है। विषय सामाजिक विषमता के कारण दलित ही हमेशा से पिसता आया है, समाज उन्हीं को दबाता है जो गरीब होते है।

'रतिनाथ की चाची' एक कुलीन किन्तु अकिंचन विधवा की करूण कहानी है। इसके संदर्भ में अर्जून घरात का कथन है, "उपन्यासकार नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' में गौरी के माध्यम से जो विधवा का करूणामय चित्रण किया वह हिन्दी साहित्य में बेजोड है। तुलना की दृष्टी में कोई भी उससे जोड नहीं सकता।"[17] गौरी भारतीय संस्कृति का निर्वहन करती है, खुद बदनाम होती है लेकिन कुल पर आँच आने नहीं देती। भारतीय नारी की यही विशेषता हैं कि वह खुद जहर पीती है मगर दूसरों को अमृत पिलाती हैं, खुद भूखी रहकर दूसरों का पेट भरती है। अत: इस उपन्यास की पात्र-योजना, वातावरण निर्मिति तथा कथा-विकास में आँचलिकता का प्रभाव दिखाई देता है। प्रगतिशील लेखक नागार्जुन में व्यंग्यपूर्ण, यथार्थ शैली में सामाजिक दंभ, नैतिकता की मिथ्या परम्पराओं तथा विधवा युवती के अभिशापित जीवन पर प्रकाश डाला है। नागार्जुन तत्कालीन समाज में विधवाओं की वास्तविक स्थिति को उद्‌घाटित करते हैं कि, "जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेगी, वहाँ यही सब तो होगा।"[18] इस प्रकार ग्रामीण जीवन की सामाजिक विषमता, संकीर्णता, स्वार्थपरता और जहालत के बीच गौरी की यातना और दु:खद अंत का सजीव चित्रण है।

⁂ बचलनमा :-

सन 1952 में प्रकाशित नागार्जुन का यह एक बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास है। डॉ. उमा गगरानी का कथन है, "1952 में प्रकाशित 'बलचनमा' उपन्यास में एक साधन तथा स्वाधिकार

वंचित किसान की संघर्षपूर्ण जीवनगाथा है। ''[19] डॉ. प्रेम भटनागर के शब्दों में - ''बलचनमा पात्र मुखोद्‌गारित आत्मकथा के रूप में लिखा गया एक आँचलिक उपन्यास है।''[20] इसमें बलचनमा नामक निम्नवर्गीय किसान पुत्र अपनी यातनापूर्ण जीवनकथा कहता है। पिता के मृत्यु के बाद बचपन से ही उसे जमींदारों के अमानवीय अत्याचारों को झेलना पडता है। फिर भी वह संघर्षमय जीवन जीते हुए अंत में अपने लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ता है। वह बडा होकर समस्त किसान-जीवन की पीड़ाओं और अभावों को सहता है, उसका अनुभव करता है। सम्पूर्ण उपन्यास में किसान का दु:ख-दर्द है तथा मानवीय अधिकारों को जकड़नेवाली शोषक जर्जर मान्यताओं, वर्ग व्यवस्थाओं और परम्पराओं पर तिखा प्रहार किया है। डॉ. ललित अरोडा के मतानुसार - '' 'बलचनमा' सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास है किंतु लेखक की भूमिका विशुद्ध कलाकार की नहीं है। लेखक ने तटस्थ दृष्टी से ग्रामीण जीवन की ओर देखने का प्रयास नहीं किया है। नागार्जुन की साम्यवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप उपन्यासपर दिखाई देती है।''[21] यह उपन्यास एक परिश्रमी, ईमानदार और साधनविहीन किसान की जीवनगाथा है। बलचनमा आधा शेतमजूर है और आधा किसान। बचलनमा के अभावों तथा अत्याचारों और उसके आधारपर शोषितों की समस्याओं के आर्थिक पक्ष पर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करने में नागार्जुन को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

प्रेमचंद के 'गोदान' में दबी भारतीय किसान की चेतना 'बलचनमा' में उभर कर आती है। वह शहर आकर कांग्रेस पार्टी के अंतर्विरोध देखता और समझता है। राजनीति कितनी खोखली है इसका भी अनुभव कर लेता है जैसे कि फूलबाबू गांधी बाबा बनकर अंग्रेजों का विरोध तो करते है लेकिन रेबनी पर बलात्कार की चेष्टा करनेवाले जमींदार का विरोध करने में आनाकानी करते है। लेकिन बलचनमा अंत तक अपने अधिकारों के लिए तथा अन्याय के विरोध में अपनी पूरी की पूरी ताकत लगाता है, संघर्ष करता है। इस उपन्यास का नायक बलचनमा होकर भी उसे नायक का स्थान नहीं मिलता। उपन्यास में व्यक्तिगत चित्रण की अपेक्षा आँचलिक जनजीवन को अधिक महत्त्व दिया गया है। उपन्यास में सामूहिक चरित्र-चित्रण अधिक उभरा है। बलचनमा एक सामान्य किसान है, जमीन का मालिक और एक साधारण मजदूर भी है जो दूसरों की खेती में काम करता है। बलचनमा का चरित्र-चित्रण इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला है।

'बलचनमा' में लेखक ने जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित ग्राम्य समाज का चित्रण किया है। बलचनमा का उसके विरोध में खडा होना महत्वपूर्ण घटना है। मालिक के बाग से किसुन भोग

चुराने पर बलचनमा के बाप को खमेली से बांध कर पीटना[22], मालिकाईन का बलचनमा को अपने पुत्र को रूलाने के आरोप में गालियाँ देना, काम पर देरी से पहुँचने पर क्रोधवश झाड़ू से पीटना आदि घटनाएँ जमींदारों की मनोवृत्ति तथा शोषण को दर्शाति है।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' में नारी-शोषण का भी चित्रण किया है। बलचनमा कहता है, ''गरीबी नरक है भैया, नट चावल के चार दाने छिंटकर बहेलिया जैसे चिडियों को फँसाता है, उसी तरह से दौलतवाले गरजमंद औरतों को फाँसा मारते है।''[23] किसी भी इज्जत-आबरू बेदाग रहने देना उन्हें बदार्श्त नहीं था क्योंकि मालिक जब नौजवान थे तो इसी गाँव में दुअन्नी के बदले जवान लडकी मिलती थी। बलचनमा की बहन रेबनी को भी बलात्कार जैसे घिनौने अत्याचार का सामना करना पडा था लेकिन वह उस हादसे से बच निकली थी।

'बलचनमा' में नागार्जुन ने वहाँ के आँचलिक वर्णन के साथ-साथ आँचलिक जन-जीवन के चित्रण में वहाँ के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, रीति-रिवाज, लोकविश्वास, अंधश्रद्धा, रूढ़ि-प्रथा- परम्परा आदि का सजीव रूप चित्रण बडे यथार्थता के साथ किया है। उपन्यास में आँचलिक भाषा तथा बोली का विशेष प्रयोग हुआ है। इसमें एकाद स्थानपर लोकगीत का भी जिक्र किया गया है। स्थानीय शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए फुट नोट का प्रयोग हुआ है। इस कहानी का कही-कही नीरस वर्णनात्मक विस्तार दिखाई देता है। 'बलचनमा' में इस प्रकार के नीरस वर्णन काफी हैं यहाँ तक की आबदस्त लेने की क्रिया का भी वर्णन है। डॉ. सुमित्रा त्यागी लिखती है - ''बलचनमा उपन्यास में निम्न जाति व लोगों में उच्च समझने तथा उनसे दबने की प्रवृत्ति उनकी हीनता की द्योतक है। अत्याचार करने पर भी मालिक को भगवान के अवतार समझते है। यह कथान कहाँ यथार्थ लगता है।''[24]

✲ नई पौध :-

सन 1953 में प्रकाशित इस उपन्यास में एक सडी-गली प्रथा, स्वार्थवृत्ति, और पुरानी पीढ़ी की शोषक वासना का नंगा चित्र एक समस्या के रूप में करते हुए लेखक नई चेतना की सम्भावनाओं की ओर संकेत करते है। यहाँ पर देखा जाए तो मैथिल ब्राह्मणों में स्थित कुरीति का उद्घाटन किया है।

यहाँ पर नई पौध से अभिप्राय है 'युवा पीढ़ी'। युवा पीढ़ी समय के अंतराल के साथ चिंतन के प्रति क्रियाशील होती है। उनमें क्रांति की लहर होती है। नई विचारधारा होती है। उपन्यास की कथा संक्षिप्त है किंतु समस्या सर्वजनीत है। मिथिला में सौरठ मेले में बहुत से वर एकत्र होते हैं।

वहाँ जाकर लोग अपनी-अपनी लडकियों के लिए लडका खोजते है। पितृहीन बिसेसरी का नाना खोखा पंडित इस मेलें में जाकर एक साठ साल का बूढा पंडीत चतुरातन चौधरी को चून लाता है। परंतु उस गाँव के नई पौध के लोग इस निश्चय का विरोध करते है।[25] और, वाचस्पति नाम का एक सोशालिस्ट युवक बिसेसरी से विवाह कर लेता है। इस प्रकार उपन्यास में मैथिल ब्राह्मणों की कुरीति का उद्घाटन किया है। ग्राम्य जीवन जिन विषमता और विसंगतियों के साथ जी रहा है, उसका यह एक उदाहरण है एक बिकट समस्या है। लेखक ने जिस गम्भीरता से इस समस्या को प्रस्तुत किया है, इतनी ही सरलता से समाधान भी कर दिया है। गोर्की के शब्दों में, ''उनकी कला साधना पक्ष और प्रतिपक्ष के बीच लड़ा गया एक धर्म युद्ध है।'' ''It is a battle for and against.''[26] इस प्रकार नागार्जुन अगर अपने उपन्यास के माध्यम से एकाद समस्या सामने लाते है, तो उसका समाधान भी देते है, उनके पात्र अंतिम समय तक परिस्थिति से झूँझते रहते है। प्रेमचंद के पात्रों की तरह घूटने नहीं टेकते। इसके पीछे लेखक की कला साधना पक्ष है और नहीं तो क्या ? नारी चरित्र भी उनके कथा साहित्य में यथार्थता के साथ चित्रित हुआ है। उनके पात्र और चरित्र महज किताबी और सुने सुनाये नहीं हैं। डॉ. नगीना जैन के शब्दों में ''उन प्रगतिशील हिन्दी कथाकारों में नागार्जुन का महत्त्व सर्वोपरि है, जिन्होंने जनता के इस संघर्ष को अपने देश की माटी से जोडने की कोशिश की और सामान्य लोगों के सामान्य दु:ख-दर्द को उनकी अनुभूतियों पर खुद को आरोपित किए बिना सीधी, सरल लेकिन प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया। उनकी इस सफलता का प्रमुख और किसी हद तक एकमात्र कारण यह है कि, अपने पात्रों और उनके परिवेश से नागार्जुन का परिचय महज किताबी और सतही नहीं है।''[27] ग्राम जीवन की सामाजिकता, सांस्कृतिकता का यथार्थ अंकन किया है।

❋ बाबा बटेसरनाथ :-

सन 1954 में प्रकाशित यह उपन्यास शिल्प की दृष्टी से अलग है। इसका नायक एक बूढ़ा बरगद वृक्ष है। इसमें एक बूढ़ा बरगद जैकिसुन को गाँव की कई पीढ़ियों और उनके क्रमिक विकास की कहानी बयान करता है। नागार्जुन की रचना 'बाबा बटेसरनाथ' बडी सफलता से आँचलिक जीवन एवं संस्कृति के विकास को लक्ष्य कर उनकी प्रतिक्रियावादी तथा प्रगतिशील शाक्तियों की पारस्पारिक क्रिया प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालता है।[28] तो जवाहरसिंह का कथन है, ''नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' में अतीतकालीक और वर्तमानकालिक वातावरण को चित्रित किया गया है।''[29].

बरगद को जैकिसुन के परदादा ने लगाया है अत: वह बरगद कई पीढ़ियों के जीवन यथार्थ का गवाह है। वह अकाल और बाढ़ की विभिषिका, कम्पनी का शासन, चम्पारन सत्याग्रह, किसानों की यातना आदि देख चुका है। यह सारी-की-सारी कहानी वह जैकिसन को सुनाता है। अपने सौ वर्षों के जीवन काल में उस वटवृक्ष ने पूरे गाँव का उत्थान-पतन देखा है। जब वह जमींदारों के शोषण, किसानों के अंधविश्वास, रूढ़ियों, आपसी कलह आदि का लेखा-जोखा वह जैकिसुन को सुनाता है। बटवृक्ष में मानवीकरण तथा प्रबुद्धता की स्थापना लेखक का एक अनोखा और सराहनीय प्रयोग है। बृटवृक्ष केवल संवेदनशून्य निर्जीव नहीं वरन सजीव पात्र के रूप में चित्रित है। इसमें राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ प्राकृतिक विपत्तियों का भी उल्लेख मिलता है। बिहार के रूपउली गाँव के लोक जीवन के साथ-साथ देशव्यापी स्वाधीनता -आन्दोलन की झाँकी प्रस्तुत की है। आत्मकथा को यथार्थता के साथ पाठकों के सामने लाने के लिए वास्तविक तिथियों का उपयोग घटनाओं के साथ किया गया है। उपन्यास के अंत में नागार्जुन के कम्युनिस्ट प्रभावित गाँव की किसान सभा की विजय की ओर भी आशादायक संकेत किया है।

बलि प्रथा, पूजा अर्चा, तीर्थ, व्रत, दान आदि का प्रभाव यहाँ दिखाई देता है। रूढ़ि परम्परा के नामपर धर्म को विकृत बनाने की पंडितों की वृत्ति यहाँ दिखाई देती है। इसके संदर्भ में डॉ.देवेश ठाकूर कहते है, ''जब धर्म निढत्व, स्वार्थी, हीन प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों का व्यवसाय बनता है तब उनसे उदात्त भावना जिसे हीन होती हैं''[30] यह कथन वहीं यथार्थ लगता है।

नागार्जुन ग्रामोत्थान के पक्षधर है और उनकी स्थिति को उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। उनका विचार है कि सामूहिक शक्ति से गाँवों का उद्धार हो सकता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में जैकिसुन को बाबा कहते है - ''झिंगुरों की तरह तुम अपनी शक्ति को पहचानों, संगठन के द्वारा ही तुम शोषकों का विरोध कर सकते हो।''[31] यहाँ स्पष्ट है संगठन ही शक्ति है।

⁕ दु:खमोचन :-

सन 1957 में प्रकाशित इस उपन्यास में टमकाकोइली ग्राम के नवनिर्माण की कथा का चित्रण है। दु:खमोचन खुद एक प्रमुख पात्र या नायक है। नायक दु:खमोचन सचमूच दूसरों के दु:ख दूर करने में ही व्यस्त रहता है। दु:खमोचन एक सुशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति है। युवा पत्नी के मृत्यु के कारण दु:खमोचन दूसरों के दु:खों के प्रति अधिक करूणामय हो जाता है। गाँव में जहाँ कही सहायता और सुरक्षा की जरूरत पडती है तो दु:खमोचन वहाँ पहुँचता है। नागार्जुन ने दु:खमोचन

को केन्द्र में रखकर गाँव का नव निर्माण तथा नव निर्माण की चेतना का संचार ग्रामवासियों में कराया है।

⁕ वरूण के बेटे :-

सन 1957 में प्रकाशित इस उपन्यास में मछुआ परिवारों की सुख-दु:ख की कहानी है। यह एक वर्ग संघर्ष की कथा है। जमींदार तथा मछुआ जाति का संघर्ष का चित्रण यहाँ पर लेखक ने किया है। स्वाधिन भारत के पहले जमींदारों का राज था और बाद में भी यही स्थिति रही। गढपोखर सदियों से इन मछुवारों की जीविका का सहारा था। इन जमींदारों के विरोध में मोहन माँझी मछवारों का आत्मविश्वास जगाता है और इनके विरोध में उन्हें खडा करता है। मोहन माँझी इन मछवारों के लिए किसान सभा का आयोजन भी करता है। यहाँ पर लेखक ने इन श्रमजिवियों की दयनीय स्थिति और दाल-भात मिलने की भी अभावग्रस्तता का चित्रण किया है। लेखक ने यहाँ पर मछुवारों के लोकगीत तथा लोककथाओं का भी जिक्र किया है।

इस उपन्यास में लेखक ने साम्यवादी प्रगतिवादी, जनवादी, विचारधारा का पूर्ण प्रभाव हैं परंतु कृत्रिमता कही भी नही झलकती है।

⁕ हीरक जयन्ती :-

सन 1961 में प्रकाशित इस उपन्यास में लेखक ने वर्तमान राजनीति तथा भ्रष्ट नेतागिरी पर करारा व्यंग्य कसा है। यह एक व्यंग्य प्रधान कृति है।

बाबू नरपति नारायणसिंह की इकहत्तरावी वर्ष गाँठ हीरक जयंती के कार्यक्रम के बीच ही कथानक होता है। समारोह में सदस्यों तथा बापूजी का अतिव्यग्यपूर्ण परिचय प्राप्त किया जाता है। नरपति नारायण के पुत्र को पुलिस पकडकर ले जाती है। उनकी लडकी घर छोडकर भाग जाती है। यहाँ पर मंजुमुखी देवी पर भी व्यंग्य कसा गया है। इस उपन्यासों के पात्र उच्च मध्यम वर्गीय परिवार के सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते है। यहाँ पर सांस्कृतिक परंपरा पर ध्यान नहीं दिया गया। इस उपन्यास में कहीं भी आँचलिकता के दर्शन नहीं होते। 'हीरक जयन्ती' समारोह भी कृत्रिम ही जान पडता हैं ऐसा मुझे लगता है।

⁕ पारो :-

सन 1975 में प्रकाशित यह उपन्यास है। यह एक लघु उपन्यास है। मूल मैथिली उपन्यास पारो का कुलानंद मिश्र द्वारा हिन्दी रूपांतर किया है। इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य मैथिल जनपद

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

में विवाह की जो गलत परंपराएँ हैं उनपर प्रकाश डालना और अनमेल विवाह की समस्या को समाज के सामने लाना।

नागार्जुन ने शेष उपन्यासों में 'उग्रतारा' (1969), 'अभिनन्दन' तथा 'इमरतिया' और 'जमानियाँ का बाबा' जो एक ही उपन्यास है। इस प्रकार नागार्जुन की उपन्यास साहित्य यात्रा रही है।

नागार्जुन प्राचीन रूढ़ियों के विरोधी और नवीन प्रगतिशील चेतना के पक्षधर है। वे वर्गविहीन समाज की कल्पना करते है। नागार्जुन ने निरन्तर ग्रामोत्थान पर बल दिया है, जाहिर है उनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों अंचल के गाँवों को अभिव्यक्ति मिली है - "उनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों, वहाँ के निवासियों की मन स्थिति, प्राचीन रूढ़ियों, जमींदार-किसान संघर्ष और नयी राजनीतिक चेतना के साथ प्राकृतिक चित्रण का अंकन कुशलता से हुआ है। उन्होंने जहाँ सामन्ती जीवन, विधि एवं पूँजीवादी हथकण्डों पर प्रहार किया है, वहाँ काँग्रेस समाजवादी तथा अन्य राजनीतिक दलो के नेताओं की वैयक्तिक दुर्बलताओं का चित्रण भी किया है। ऐसा करते समय समाज के प्रति, व्यक्ति के संकुचित स्वार्थों के प्रति उनकी दृष्टि व्यंग्यात्मक रही है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक स्थिति के जीवन्त चित्रण मिलते है।"[32] यहाँ पर स्पष्ट है नागार्जुन की साहित्य-कला का सुवर्णमध्य ही हमें दिखाई पडता है।

इस प्रकार हमने नागार्जुन के कुछ चुनींदे उपन्यासों के बारे में संक्षिप्तता से अध्ययन किया है। तथा उन्हे शब्दांकित करने का प्रयास किया है। अत: हम कह सकते हैं कि नागार्जुन ग्राम जीवन के चितेरा है। परम्परागत जीवन के साथ चित्रित, परिवर्तीत ग्रामजीवन पर प्रकाश डालकर यहाँ समाज की ओर संकेत किया है। अंधश्रद्धा, बलि प्रथा को नकार कर नए विलोप के वाहक पात्र उनके प्रतिनिधी है। खुद की अनुभूति को बिहार की जनव्यवस्था को प्रभावी शैली में प्रकट किया है। मिथिला की भूमि साहित्य का ओंढ बनी। ग्रामजीवन की झाँकी उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। असल में वे एक सकल ग्राम जीवन के चितेरे है यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

1.4.2 कवि नागार्जुन :-

नागार्जुन हिन्दी काव्यधारा के उन प्रमुख स्तम्भों में है जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसको जीया भी। नागार्जुन का संपूर्ण कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है। उनकी पद्य और गद्य दोनों की कृतियों में प्रगतिशीलता के विविध आयाम दिखाई देते है, जिनमें मध्यमवर्गीय जीवन तथा मजदूरों की जिन्दगी का संपूर्ण चित्रण यथार्थ रूप में मिलता है। जनकवि होने के कारण

उनमें तरल संवेदनात्मक आवेग है इसलिए वे सीधे जनसाधारण से जुड जाते है। उन्होंने अपने समय की सभी समस्याओं का जिक्र अपने साहित्य में किया है। वे समस्याएँ चाहे राजनीतिक हो, आर्थिक हो या सामाजिक, एक युग की धडकन उनके साहित्य में है। नागार्जुन की पहली हिन्दी कविता 'राम के प्रति' 1935 में प्रकाशित हुई। तब से आज तक नागार्जुन की काव्यरचनाओं का संसार लगातार विकसित और संपन्न हुआ है। "कविता में नागार्जुन की दिलचस्पी का दायरा बहुत बडा है और बातों को छोड भी दें तो भाव बोध और मानवीय स्थितियों की जैसी विविधता उनके यहाँ है वैसी अन्यत्र नहीं, उनकी कविता एक तरह से अपनी सम्पूर्णता में, विगत चालीस वर्षों के भारतीय जीवन के उथल-पुथल की महागाथा है।"[33]

नागार्जुन की काव्यगत विविधता और रचनासामर्थ्य उनकी क्षमता को प्रमाणित करता है जिसका उनकी कविताओं के अध्ययन से पता चलता है। बाबा ने अपने कवि और कथाकार रूप को अधिक प्राथमिकता दी। इन दोनों में उन्होंने शोषित, प्रताड़ित जन-जीवन का चित्रण किया है और मानवता का पक्ष लिया। उनकी कविताएँ है जीवन और अनुभव के वैविध्य को सार्थक एवं यथार्थ रूप में प्रतिष्ठापित करती है। उनकी कविता में आक्रोश, मोहभंग, विद्रोह, संघर्ष का स्वर सुनाओ देता है। नारी चिंतन, नारी जीवन, नारी शोषण आदि बारिकीयों को भी उन्होंने अपने काव्य में चित्रित किया है। उनमें व्यापक मानवतावादी चेतना के दर्शन होते है जिससे व्यष्टि और समाष्टिक का भेद मिट जाता है। "नागार्जुन ने अपने जीवन के लगभग पचास वर्षों में हजारो कविताएँ लिखी हैं। एक-एक कतरे को कविता में जोड़ने से नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत जनसंकुल है कि किसी एक बिम्ब या सूत्रों में उनके काव्यलोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। ये हजार-हजार बाहोवाली कविताएँ हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती है। हजार वस्तुओं को अपनी मुठ्ठियों में थामे।"[34] निष्कर्षता उनके काव्य में सामाजिक विषमता के स्थान पर एक ऐसे समाज की रचना पर बल दिया गया है जहाँ सभी अपना पूरा अधिकार पा सकते और शोषणकारी ताकतों का खात्मा कर सकते हैं।

काव्य कृतियाँ :-

1.	युगधारा	2.	प्यासी पत्थराई आँखें
3.	सतरंगे पंखोंवाली	4.	तुमने कहा था
5.	खिचडी विप्लव देखा हमने	6.	हजार-हजार बाहोवाली

7. भस्मांकुर
8. भूमिजा
9. खून और शोले
10. प्रेत का बयान
11. तालाब की मछलियाँ
12. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !
13. रत्नगर्भ
14. चंदना
15. शपथ

अन्य कृतियाँ :-

1. अयोध्या का राजा (बाल साहित्य)
2. सयानी कोमल (बाल साहित्य)
3. मेघदूत (अनुवाद)
4. जयदेव का गीत गोविन्द
5. प्रेमचंद (आलोचना)

'भस्मांकुर' एक खंडकाव्य है, जिसमें काम दहन के प्रसंग को बरवै छंद में लिया गया है। मैथिली में प्रकाशित 'पत्रहीन नग्न गाछ' जो की मैथिली में तथा अब हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। घुम्मकडी प्रवृत्ति के कारण उनकी कविताएँ भी इधर-उधर सफर करती रही है। ''कुछ खो गई है, कुछ खो जाने की स्थिति में है, कुछ मित्रों के पास बिखरी हुई है और बाकी इस यात्री कवि के भेले में दरभंगा- पटना- इलाहाबाद-दिल्ली, दिल्ली-इलाहाबाद-पटना-दरभंगा सफर करती मिट रही है।''[35]

फिर भी उनकी कुछ चुनींदा काव्यकृतियों का संक्षेप में विवरण कुछ इसप्रकार है -

✻ युगधारा :-

सन 1953 में प्रकाशित बुकलेट के रूप में कवि नागार्जुन की यह रचना प्रगतिवादी चेतना से भरी है। इसमें एक ओर 'शपथ' और 'दर्पण' जैसी कविताएँ हैं जिनमें गाँधी की हत्या के संदर्भ में कवि की देशभक्ति तथा राष्ट्रीयतापूर्ण वाणी व्यक्त हुई है। वही दूसरी ओर 'प्रेत का बयान' जैसी व्यंग्यशील रचनाएँ भी है। बापू की हत्या से कवि का हृदय कराहा उठा था। सामाजिक, राजनीतिक, तथा मानवीय भूमिका पर लिखी गई, इस संग्रह की कविताएँ आस्था, निष्ठा की दृष्टि से ओतप्रोत है।

काव्य और रचना के बारे में स्वयं कवि कहता है -

''इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत
कलाधर या रचयिता होना पर्याप्त है,
पक्षधर की भूमिका धारण करो ----

विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पडेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
जीर्ण संस्कृति को, अगर सप्राण करना चाहते हो।''[36]

इस तरह नागार्जुन की पक्षधरता स्पष्ट हैं क्योंकि उनके अनुसार युग के इस विप्लवी उताप से आज कोई भी बाहर नहीं रह सकता है।

❊ सतरंगे पंखोंवाली :-

सन 1959 में प्रकाशित यह काव्यकृति कला और शिल्प की दृष्टी से प्रभावकारी है। यहाँ पर कवि का प्रकृति विषयक प्रेम तथा गंध-सुगंध के प्रति आसक्तिपूर्ण नजरिया विशेष रूप से स्थान पा सका है। जन जीवन की पीडा, अवसाद आदि के बीच खोया कवि का व्यक्तित्व प्रकृति के आँचल में उसके उन्मुक्त सौंदर्य का पान करता है। 'बसंत की अगवानी' तथा 'नीम' की दो टहलियाँ विशेष ध्यान आकृष्ट करती है। 'सतरंगी पंखोंवाली' और 'अकाल और उसके बाद', 'कैसा लगेगा तुम्हे' तथा 'सिंदुर तिलकित भाल' इस संग्रह की ये कविताएँ है जो न केवल कवि के प्रशस्त भाव तथा सौंदर्य की परिचायक है।

❊ तुमने कहा था :-

नागार्जुन के कविता के द्वितीय चरण में यह काव्यसंग्रह है। इसमें राजनीतिकता की झाँकी है। इसमें व्यक्तियों पर केंद्रित कविताएँ अधिक सटीक है। यहाँ पर प्रकृति पर आधारित कुछ कविताएँ है। मानव जीवन के विविध भाव-विभावों का चित्रण इस कविताओं में हुआ है। इस कविताओं में जो चित्रण हुआ है वह नेहरू युग के बाद का है। इन कविता में डॉ. चंद्रसिंह के मतानुसार, ''1967 की संविद सरकारें और उसके ठिक दस साल बाद 1977 में अनेक दलों को मिलाकर बनी केंद्र सरकार काँग्रेस के पतन का संकेत है, तो सत्तालोभ मात्र का ध्रुवीकरण और देश जनता की उपेक्षा कर उस राजनीति के पतन का संकेत भी।''[37]

❊ प्यासी पथराई आँखें :-

यह सन 1962 में प्रकाशित काव्यसंग्रह है। इस संग्रह की लगभग सभी कविताएँ आक्रमक व्यंग्य और विद्रोही भाव से व्यक्त है। इससे कवि का व्यंग्यकार तथा चित्रकार का रूप अधिक गहराई से उभरकर आता है। शेरजंग गर्ग के मतानुसार, ''ये कविताएँ गरीब देश में सामंती परम्परा की पोषक महारानी के साथ-साथ देश के उन कर्णधारों पर भी कटाक्ष करती है जो इस सारी स्थिति के लिए जिम्मेदार है।''[38]

✲ खिचड़ी विप्लव देखा हमने :-

सन 1974 से सन 1978 तक के बीच लिखी नागार्जुन की कविताओं का यह एक हिस्सा है। आठवे दशक का यह काव्य भारतीय समाज और राजनीति का उथल-पुथल भरा काव्य है। आजादी के बाद देश का सबसे बडा आन्दोलन, संपूर्ण क्रांति के नाम पर जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में कांग्रेसी शासन के पतन का कारण बना। इस युग में पक्ष और विपक्ष की राजनीति ने श्रीमती इंदिरा गांधी और जयप्रकाश के आधारों पर एक नया चरित्र विकसित किया। नागार्जुन के इस संग्रह की कविताएँ इसी काल की चेतना का दस्तावेज है।

✲ हजार-हजार बाहोंवाली : -

सन 1936 से लेकर 1980 तक की कविताओं का यह एक बडा संग्रह है। यह एक ऐसा संग्रह है जिनमें उनके रचनाकार व्यक्तित्व की अधिकांश रेखाएँ मिल जाती है। नागार्जुन ने इस संग्रह में स्वाधिनतापूर्व भारतीय स्थिति को देखकर तत्कालीन स्थिति का वर्णन किया है।

✲ भस्मांकुर :-

सन 1971 में प्रकाशित खंडकाव्य है। इस काव्य का कथानक पौराणिक है। पौराणिक कथा संकेत का सूत्र पकडकर नागार्जुन ने अपनी प्रतिभा के बल पर इस खंड काव्य की रचना की है। शिवकुमार मित्र के अनुसार, ''नागार्जुन के इस काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि कवि-गुरू के संस्कारों से वेष्टित होने के बावजूद वह नागार्जुन की मौलिक कवि प्रतिभा की उपज है और यह मौलिकता केवल कथा वस्तु के विन्यास एवं उनके विविध प्रसंगों में ही नहीं, चरित्रों के चित्रण तथा अपने सर्वाधिक प्रखर रूप में कृति के अंतर्गत निहित उस समूची विचारधारा में देखी जा सकती है। जिनके नाते ही 'भस्मांकुर' अपनी सशक्त पौराणिक आधारभूमि के रहते हुए एक प्रगतिशील समाजचेतना, आधुनिक कवि की कृति कहलाने का गौरव प्राप्त कर सका है।''[39] एक हजार पंक्तियों वाले इस संग्रह में मानव मनोवृत्ति, नारी-स्वभाव, मित्र का आदर्श रूप तथा आधुनिक युग की लोकवादी दृष्टी का संस्पर्श भी मिलता है।

✲ भूमिजा :-

'भूमिजा' एक लघुकाव्य है। इसमें एक से अधिक कथाएँ है। 'भूमिजा' के रचना के मूल में लोकजीवन के साथ भारतीय नारी की जीवनगाथा कही अधिक प्रेरक है। नागार्जुन ने रामकथा के भीतर से नारी जीवन की त्रासदी और नारी सुलभ संवेदनाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। ''भूमिजा

काव्य सौंदर्य उसका लोकजीवन और प्रकृति है नागार्जुन ने कथा विधान के अंतर्गत प्रकृति की बहुविविध उपस्थिति दिखाई है।''[40]

इस प्रकार नागार्जुन के काव्यसंग्रह में कविताओं की विविधता मिलती है। साथ ही इन कविताओं में राजनीतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, व्यंग्यपरक आदि का यथार्थता से चित्रण मिलता है। ''व्यक्तिगत दु:ख पर न रूककर वे बार-बार व्यापक दु:ख पर प्रकाश डालते हैं और यही सच्चे कवि की पहचान है। अत: धरती, जनता और श्रम के गीत गानेवाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा।''[41]

लगता है कवि काव्यभावुक होने के साथ-साथ चिंतक, ज्ञानवर्धक, नई चेतना का प्रतिक होता है, जो समसामायिक समस्या को उजागर करता है, इसका प्रमाण नागार्जुन का काव्य संसार है। प्राचीन पुराण कथा के साथ-साथ घटनाओं का आधार लेकर ग्राम जीवन से जुडी कहानी को प्रकाश में लाया है। सीता जैसे नारी की कथा, गांधी हत्या, राजनीतिक आंदोलन या आम आदमी की करूण कहानी हो उसे यहाँ काव्यबद्ध करके प्रगतिवादी कवि नागार्जुन ने काव्य को अनोखा रूप प्रदान किया है। देखा जाए तो सच्चे अर्थों में ये 'जनकवि' है।

1.4.3 कहानीकार नागार्जुन :-

इस निर्भीक जनकवि की प्रखर प्रतिभा दिनोदिन निखरती ही गई और साहित्य का सभी विधाओं मे उनकी कलम हावी रही। कविता, उपन्यास, बालसाहित्य की तरह कहानी साहित्य में भी नागार्जुन ने अपनी कलम चलाई है। नागार्जुन की कहानियों में 1) असमर्थदाता 2) ताप हारिणी 3) विशाखा-मृगारमाता 4) ममता 5) आसमान के चंदा तेरे 6) भूख मर गई थी आदि कहानियाँ उपलब्ध है।

नागार्जुन की सबसे पहली कहानी सन 1935 में छपी थी। नागार्जुन की कहानियों में कुछ विशेषताएँ पायी जाती है जैसे कि सहजता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, रोचकता आदि। 'विशाखा मृगारमाता' धनसंपदा और वैभवपूर्ण नगर सेठ और राजा के समझौतावादी संबंधों पर आधारित कहानी है। 'ताप हारिणी' कहानी गंगा में स्नान करनेवाली युवतियों की ओर वहाँ पर उपस्थित पुरूषों की दृष्टि कैसी आडी-तिरछी लकीरें बनाती है। इसका चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। 'ममता' में एक मातृविहीन नायक 'बूलो' की कहानी है जो कहानी का मुख्य पात्र है। उसकी चाची बूलो को दो चपता लगा देती है लेकिन अपनी इस गलती पर फिर पछताती है। और फिर उसपर

पहले से भी अधिक ममता बरसाती है। 'आसमान में चंदा तेरे' कहानी में एक साहित्यकार की आर्थिक, सामाजिक तथा पारिवारिक स्थितियों का यथार्थ वर्णन है। वर्तमान समाज में साहित्यकार के प्रति न तो पहले जैसी भावना रही है और न ही श्रद्धा मनोरंजन के नामपर नवोदित कवियों की मंडली से सस्ते में काम निकालने के लिए कवि सम्मेलनों का आयोजन प्रतिष्ठित आयोजक करते है। 'भूख मर गयी थी' कहानी आम गरीब जनता की है जो विपदाओं के अनेक थपेडे सहती है, और अगर ये थपेडे वृद्धावस्था में सहने पडे तो स्थिति और भी बिकट हो जाती है। यहाँ पर मुख्य चरित्र वृद्ध व्यक्ति है।

नागार्जुन की कहानियों में विविधता मिलती है जिसके साथ वास्तविकता जुडी हुई होती है। नागार्जुन ने अपनी कहानीयों में मध्यमवर्गिय जीवन का चित्रण यथार्थता से किया है। उनकी कहानियों में व्यक्ति की पीड़ा और आक्रोश, प्रताड़ना, अत्याचार, राजनीतिक दाँव-पेंच आदि का चित्रण दिखाई पडता है। यह सब चित्रण निष्पक्षता से उन्होंने किया है। इसलिए वे जन-जन में लोकप्रिय बने है। जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, ''नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य को संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कवि हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी हल कर पाये है।''[42] इस प्रकार उनकी कहानियों में ही नागार्जुन के संपूर्ण दर्शन होते है।

✻ यात्रा प्रसंग :-

नागार्जुन ने अन्य साहित्यिक विधाओं की तरह 'यात्रा प्रसंग' में कुछ रचनाएँ लिखी हैं। जो कुछ इस प्रकार - 1) हिमालय की बेटियाँ 2) टिहरी से नेलड 3) थो लिङ् महाविराम 4) अतिथ्य सत्कार 5) सिंध में सत्रह महिने आदि है। नागार्जुन का यात्रा प्रसंगों का विवरण असल में यात्राओं के बोलते प्रसंग है। इसमें लेखक की लेखन शैली, संवेदनात्मक मृदुल गुंफन, भाषाशैली, चित्रात्मक कला और इन सबके उपर मानव-मन के हृदय में एक ही स्पंदन का सूत्र झंकृत करनेवाली आत्मीयता है। नागार्जुन ने अपने अनुभूति से जो कुछ यात्रा के दौरान जो-जो प्रसंग आये उन्हें शब्दांकित किया है। उन्होंने वर्णन शैली, कलात्मकता, चित्रांकन शैली का प्रयोग अति सुन्दरता से किया है। उनके यात्रा प्रसंग में खेत-खलियान, जंगल, सीधे-साधे लोग, उनका रहन-सहन, भाषा, बोली, खान-पान, व्यवसाय आदि का चित्रण मिलता है।

नागार्जुन के यात्रा प्रसंगों को पढते समय 'गागर में सागर भरने' की उक्ति का स्मरण होता है क्योंकि उन्होंने अपने प्रसंग छोटे-छोटे वाक्यों में और वे भी संपूर्ण चित्रण के साथ अति आकर्षक तथा रोमांचक पद्धति से किया है। उन्होंने पात्रों का रेखांकन बडी मार्मिकता से किया है। यात्रा प्रसंग में उन्होंने देश-काल-वातावरण आदि का चित्रण किया है। कहीं-कहीं, यात्रा प्रसंगों की भाषा अति साहित्यिक भी हो गयी है। यात्रा प्रसंग में उनका अनुभव भी महत्त्वपूर्ण रहा है क्योंकि इसी के बलबुते पर उन्होंने बडे यथार्थ से यह चित्रण रूपी महल खडा किया है जिसकी नींव मजबूत है।

✲ संस्मरण :-

संस्मरण साहित्य विधा में 1) मैं सो रहा हूँ 2) एक घंटा 3) आईने के सामने - यह तीन संस्मरण है। 'मैं सो रहा हूँ' संस्मरण बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ बिताए दिनों की याद है। वे अपनी धुन के पक्के थे। दिन में से दो-तीन घंटा सोना जरूरी मानते थे। लेखक ने इस संस्मरण में दिन में साने पर अपने विचार शब्दांकित किये है।

'एक घंटा' निराला संबंधी संस्मरण है। विषय है गोमती पर बाँध बँधना चाहिए कैसे और कब ? इस बारे में निराला कुछ नहीं कहते केवल यही कहते है, ''गोमती पर बाँध कौन बाँधेगा।'' इस संस्मरण में लेखक ने तारीख वर्ष तथा समय भी दिया गया है। 3 जनवारी 53 शाम का वक्त। छ बज रहे थे। आरंभ में तथा अंत में 'घडी ने सात बजा दिए।'

तिसरा संस्मरण है 'आईने के सामने'। इसमें मोहन राकेशजी है। इसमें नागार्जुन ने प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन सहजता से किया है। इसमें संवाद-शैली का प्रयोग हुआ है। आत्मकथनात्मक शैली का यह संस्मरण साहित्य में विशेष स्थान रखता है। इस प्रकार इनकी संस्मरण विधा हिंदी साहित्य में एक विशेष उपलब्धि है। यहाँ स्पष्ट है घुमक्कड नागार्जुन अपने समाज को यात्रा के माध्यम से कुछ देते है। अत: उनकी यात्रा 'साहित्यिक यात्रा' थी। इसीकारण अनुभूति रूपक यात्रा साहित्य क लिए ज्ञानवर्धक बनी है।

✲ भाषण :-

चिठ्ठी-पत्री में 'श्री खुशीराम शर्मा वसिष्ठ के नाम', 'डॉ.रामविलास शर्मा के नाम', 'नरेंद्र कोहली के नाम', 'डॉ. किशोर नवल के नाम', 'डॉ. मैनेजर पाण्ड्ये के नाम', 'श्री वाचस्पति के नाम', 'डॉ. सुरेश शर्मा के नाम', 'श्रीमती शिरोमणि देवी के नाम', 'सुश्री आरती शुक्ल के नाम' पत्र है। इन पत्रों में लेखक सर्वत्र उपलब्ध नहीं है परंतु प्रत्यक्ष बोल रहा है। ममत्व, स्नेह, तथा कोमल स्पर्श महसूस कर रहा है ऐसा लगता है।

✲ साक्षात्कार :-

नागार्जुन का साक्षात्कार का शीर्षक है 'प्रश्नों के सलीब पर' जिसमें लेखकों की प्रखरता के विभिन्न रूप स्पष्ट करते हुए अपनी प्रगतिशीलता के तीव्र रूप का आधार बताया है। युवा लेखन, राजनीतिक वार्तालाप तथा साहित्यकारिता के बारें में नागार्जुन के विचार एकत्रित है।

✲ निबंध :-

नागार्जुन ने अन्य विधाओं की तरह गद्य साहित्य में निबंध भी लिखे है। विचार की सहृदयता और भाषा की सरलता, शैली की तरलता के साथ मिलकर नागार्जुन ने निबंध लिखे है। 'बम्भोलेनाथ' यह उनका प्रथम निबंध है। इसमें बैल की सजावट का रूप उनकी चित्रात्मक शैली की क्षमता को स्पष्ट करती है। 'सरस्वती का अपमान' यह उनका दूसरा निबंध रहा है। इसमें जनता की आवाज बुलंद है। इसमें कविवरों के साहित्यिक भाषा में लिपटे गीत और बोल जनसमाज, श्रोता को इतना मुग्ध नहीं कर पाते जितना एक नवयुवक द्वारा गाया गया लोकगीत। उनकी भाषा में सरस्वती का सच्चा सम्मान है। इसमें अतिरिक्त और निबंध है, 'दादाजी आप रिटायर हो', 'रहनुमा', 'ब्राह्मण बुद्ध युग में', 'राजाश्रय और साहित्य जीविका', 'अंग्रेजों को नहीं लादा जा सकता', 'हिन्दी की छाती पर', 'मैथिली और हिन्दी', 'मानक चतु:शब्दी समारोह' आदि।

नागार्जुन ने निबंध विधा में अपनी प्रतिभा तथा प्रगतिशील चेतना की छाप छोडी है। ''लेखक की प्रबुद्धता, समसामायिक प्रसंगो का लेखा-जोखा तथा नई पीढ़ी के प्रति नई आशाएँ उनकी अपार समर्थता की द्योतक है।''[43] उनके कुछ व्यक्तिपरक निबंध कुछ इस प्रकार - 'राहुल सांकृत्यायन', 'प्रेमचंद', 'यशपाल', 'फणीश्वरनाथ रेणू' आदि। इसमें समीक्षक रूप केवल विचारों की श्रृंशला में उलझकर तटस्थ नहीं रही है बल्कि साहित्यकारों की जीवन-रस स्त्रोत है।

कबीर की तरह उनके यहाँ व्यंग्य जन्मजात संस्कार के रूप में है। सामाजिक असमानता, धार्मिक रूढियाँ, फँशन परस्ती, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि पर नागार्जुन ने व्यंग्य कसा है। बाबा भाषा और रूप-विधान के प्रति तटस्थ है। उनके साहित्य में भाषा सहज सरल दिखाई पडती है। देशज, उर्दू, अंग्रेजी आदि सभी भाषाओं के शब्द तथा आँचलिक लोकोक्तियों, मुहावरों का प्रयोग उनके साहित्य में मिलता है। इनकी साहित्यिक कृतियों को देखे तो कभी-कभी व्याकरण की सीमाएँ भी टूट जाती है तो कभी गद्य-पद्य का भेद भी मिट जाता है।

इस प्रकार नागार्जुन ने समाज के विभिन्न वर्गों को अपने साहित्य में चित्रित कर अपनी बहादुरता का परिचय दिया है। इसे हम लेखक की अनुभवजन्य क्षमता का परिचायक ही कहेंगे क्योंकि एक अनुभव संपन्न लेखक ही इतने विविधतापूर्ण तरीके से अपने साहित्य की सृष्टी कर सकता है।

1.5 पुरस्कार :-

रचनाधर्मी साहित्यकार कवि नागार्जुन को उनके रचनाओं के कारण अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया है जो इस प्रकार -

1) मैथिली शरण गुप्त सम्मान।
2) साहित्य अकादमी।
3) भारत भारती।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से नागार्जुन ने अपना योगदान दिया है जिसके फलस्वरूप उन्हें उपर्युक्त सम्मान बहाल हुये है।

निष्कर्ष :-

नागार्जुन का जन्म 1911 ई. में जेष्ठ मास की पूर्णिमा को हुआ। उनका बचपन बिन माँ के दुलार से ही गुजरा, पिता घुम्मकड वृत्ति के होने के कारण उनका बचपन अभावग्रस्तता में बिता है। उनकी शिक्षा गाँव में एक पाठशाला में संपन्न हुई है। शिक्षा के बाद उन्होंने अपनी कलम चलाई। उन्होंने अपने साहित्य में मिथिला के ग्रामों में स्थित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के अलावा वहाँ के गरीब जनजीवन की मतस्थितियों, पूँजीपति द्वारा शोषण, जमीनदार-किसान संघर्ष एवं प्राकृतिक चित्रण का वर्णन किया है। उन्होंने उपन्यास, काव्य, कहानी, निबंध, संस्मरण, यात्रावर्णन आदि विधाओं में अपना साहित्य लिखा है। उनके उपन्यासों में भारतीय जनजीवन का चित्रण तथा उनकी समस्याओं का चित्रण मिलता है। उनका पहला उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' यह आँचलिक उपन्यास है। इसमें एक विधवा तरूण स्त्री की वेदनामई कहानी है। 'बलचनमा' में साधनहीन किसान तथा किसानों पर जमींदारों के अत्याचार की करूण कहानी है। 'नई पौध' में अनमेल ब्याह जैसी बुरी प्रथा का तथा उस प्रथा के विरोध में एक नई चेतना का उभारना इसका चित्रण हुआ है। 'बाबा बटेसरनाथ' में एक वटवृक्ष को प्रतिक मानकर जमींदारी प्रथा और अंग्रेजों की शासन नीति का पूरे सौ वर्षों का ब्यौरा दिया है। 'दु:खमोचन' में प्रमुख पात्र दु:खमोचन अपनी सुख-सुविधा की परवाह किये बगर गरीबों की समस्याओं को हल करने का

चित्रण है। वास्तव में यह एक आदर्शवादी पात्र है। 'वरूण के बेटे' में मछुओं के जीवन-संघर्ष और जागरण की कहानी कही गयी है। 'उग्रतारा' यह उपन्यास बंदीगृह की पार्श्वभूमि पर आधारित है। इसी प्रकार नागार्जुन ने उपन्यासों में जमींदारी प्रथा, जमींदार-किसान संघर्ष, नारी जीवन, नारी शोषण, अंधश्रद्धा, रूढ़ि, प्रथा-परम्पराएँ, अंग्रेजों का शोषण, जातिव्यवस्था, आदि का यथार्थ रूप से चित्रण किया है।

नागार्जुन ने उपन्यास विधा के साथ-साथ काव्य विधा पर भी अपनी लेखनी चलाई है। उनकी रचनाओं में कविता और जीवन यथार्थता के साथ घूल-मिल गये है। नागार्जुन हिन्दी काव्यधारा के उन प्रमुख स्तम्भों में से है जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसको जीया भी। उनकी पहली कविता 'राम के प्रति' 1935 में प्रकाशित हुई तब से उनका कविता रथ बिना रूके चलता ही गया, चलता ही गया। 'युगधारा', 'सतरंगे पंखोवाली', 'भस्मांकुर' आदि खंडकाव्य तथा काव्य संग्रहों में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, राजनीतिक चित्रण, प्रकृति वर्णन, नारी जीवन अंकन, पौराणिक चित्रण आदि का वर्णन मिलता है। नागार्जुन का काव्य आनन्द, प्रेम, वात्सल्य, क्रोध आदि भावों को बिम्ब रूप बनाते है।

नागार्जुन की काव्यगत विविधता और रचना सामर्थ्य उनकी क्षमता को प्रमाणित करता है। सचमुच ही नागार्जुन के काव्य में प्रगतिशील चेतना के वाहक, जनचेतना पक्ष स्वर, गरीब जनता के प्रति करूणाशील, उदार मानवतावाद के सच्चे मित्र, तीखें व्यंग्यकार, मानवता के प्रतिष्ठापक, जीवन के प्रति आस्थवान, ऐसे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कवि के रूप में नागार्जुन को जाना जाता है। नागार्जुन के कविताओं के सिवाय हिन्दी कविता का संसार आधा-अधूरा है ऐसा कहा तो अनुचित न होगा।

नागार्जुन ने उपन्यास काव्य के अलावा कहानियाँ भी लिखी है। उनकी कहानियाँ मध्यमवर्ग ग्रामीण गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कहानियों में सहजता, स्वाभाविकता, सरलता, स्पष्टता, आदि विशेषता रहती है। उनकी कहानियाँ 'असमर्थदाना', 'तापहारिणी', 'ममता', 'विशाखा-मृगारमाता', 'आसमान से चंदा तेरे', 'भूख मर गयी थी' आदि में जीवन की वास्तविकता का बडी यथार्थता से चित्रण हुआ है।

नागार्जुन ने उपन्यास, कहानी, काव्य के सिवाय निबंध साहित्य भी लिखा है। उनका 'बम्भोलेनाथ' यह पहला निबंध है। 'सरस्वती का अपमान', निबंध में जो व्यंग्य लेखक ने कसा है

वह एक काँटे के भाँति मन को चूभता है। इसमें शैली तरलता, भाषा की सरलता, और सहृदयता मिलती है। उन्होंने कुछ व्यक्तिवादी निबंध भी लिखें।

नागार्जुन के यात्रा-प्रसंग में रोमांचकारी सजीव चित्रण भी मिलते है और यही उनके रचनाओं की विशेषता रही है। उनकी 'हिमालाय की बिटीयाँ', 'आतिथ्य सत्कार', 'सिंध में सत्रह महीने' आदि यात्रा प्रसंगो में रोमांचक वर्णन मिलते है। लेखक शैली, भाषात्मक प्रवाह, संवेदनात्मक, मृदुल गुंफन, चित्रात्मक कला आदि का सुवर्णमध्य हुआ है।

नागार्जुन ने अपने जीवन के साहित्य यात्रा में संस्मरण भी लिखे है। उनका पहलास संस्मरण 'मै सो रहा हूँ' लेखक ने इसमें दिन में सोने पर अपने विचार व्यक्त किये है। 'एक घंटा', 'आईने के सामने' आदि संस्मरण इनके है। इन संस्मरणों की भाषा स्वाभाविक बनी है, उसमें आत्मकथात्मक कथ्य का भी प्रयोग हुआ है। नागार्जुन ने 'भाषण',चिठ्ठी-पत्री' तथा साक्षात्कार आदि का भी लेखन कार्य किया है।

नागार्जुन के साहित्य अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि, उनका साहित्य जीवन और जगत के लिए 'प्राणवायु' का काम करता है, हर जीव बिना प्राणवायु के नहीं जी सकते उसी प्रकार यह हिन्दी साहित्य भी 'बाबा' के साहित्य के बिना मृत इन्सान की तरह हो सकता है। उनका साहित्य वास्तविक संसार का आलोचना और प्रतिबिम्ब भी है। सहज जीवन के चितेरे नागार्जुन अपने व्यक्तिगत जीवन में जितने सहज तरीके से जीवन जीते है साहित्य में भी वह उतनी ही सहजता से अभिव्यक्त होते है। उनके साहित्य में कलात्मकता मणिकांचन संयोग के साथ है। नागार्जुन की हर साहित्यिक कृति विविधताओं और सम्पन्नताओं से ओत-प्रोत है। नागार्जुन ने अपने कविता के जरिए समाज में व्याप्त बुराइयों, भ्रष्टाचार, बढ़ती अनैतिकता, राजनैतिक और आर्थिक विसंगतियों पर निरन्तर प्रहार किया है। निम्नवर्गीय समाज की स्थितियों का चित्रण तथा उनकी समस्याओं को संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत करने का श्रेय नागार्जुन को है। नागार्जुन हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों में प्रमुख हैं जिन्होंने अपनी सर्जना में सामान्य जन के ऐसे सहज जीवन चित्र प्रस्तुत किये है जहाँ शास्त्रीय और अति साहित्यिकता का आतंक नहीं है। अत: हिन्दी साहित्य के चरमकोटी के साहित्यकार नागार्जुन को माना जाए तो यह अनुचित नहीं होगा। हिन्दी साहित्य में उनका स्थान अद्वितीय है, उनका साहित्य हिन्दी साहित्य जगत में उगते सूर्य की तरह प्रकाशमान है।

संदर्भ सूची

1. सत्यनारायण - 'नागार्जुन' (पहली बात में) रचना प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1991.
2. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', शाम प्रकाशन, जयपुर, पं. सं. 1985.
3. वही, पृ. 1.
4. डॉ. प्रकाशचंद भट्ट - 'नागार्जुन जीवन और साहित्य', सेवासदन प्रकाशन, प्र. सं. 1974, पृ.26.
5. वही, पृ. 38.
6. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', शाम प्रकाशन, जयपुर, पं. सं. 1985, पृ.14.
7. कमलेश्वर - 'लहर', पृ. 18.
8. डॉ. प्रकाशचंद भट्ट - 'नागार्जुन जीवन और साहित्य', सेवासदन प्रकाशन, प्र. सं. 1979, पृ.26.
9. प्रभाकर माचवे - 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि - नागार्जुन', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र. सं. 1977, पृ. 26.
10. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 47.
11. वही, पृ. 47.
12. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त - 'आँचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प', अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.1975, पृ. 42.
13. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 47.
14. डॉ. गणपितचंद्र गुप्त - 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास', न्यु भारत भवन, चंदीगड, प्र. सं. 1995, पृ.935.
15. डॉ. शंभूसिंह - 'रांगेय राघव और आँचलिक उपन्यास', सुशिल प्रकाशन, अजमेर, प्र.सं.1979, पृ. 27.
16. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', पृ. 23.
17. प्रा. अर्जुन जानू घरात - 'कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ', अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1997, पृ. 17.

18. तेज सिंह - 'नागार्जुन का कथा साहित्य', पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1993, पृ.58.

19. उमा गगराणी - 'उपन्यासकार रेणू तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन', भारतीय निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 73.

20. डॉ. प्रेम भटनागर - 'हिन्दी उपन्यास शिल्प-बदल में परिप्रेक्ष्य', अर्चना प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1973, पृ. 73.

21. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 51.

22. नागार्जुन - 'बलचनमा' पृ. 3.

23. वही,पृ. 78.

24. डॉ. सुमित्रा त्यागी - 'हिन्दी उपन्यास -आधुनिक विचारधाराएँ', साहित्य प्रकाशन, प्र. सं.1978, पृ. 178.

25. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 21.

26. विजय बहादुर सिंह - 'नागार्जुन का रचना संसार', संभावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1982, पृ. 124-125.

27. डॉ. नगीना जैन - 'आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास', अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1976, पृ. 130.

28. डॉ. शशिभूषण सिंहल - 'हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ', विनोद पुस्तक, आगरा, प्र.सं.1970, पृ.131.

29. डॉ. जवाहर सिंह - 'हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र. सं. 1986, पृ. 191.

30. डॉ. देवेश ठाकुर - 'मैला आँचल की रचना प्रक्रिया', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.1987, पृ.69.

31. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ. 98

32. डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श - 'हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन', रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1970, पृ.423.

33. आलोचना- अंक56-57, पृ. 17 (1966).

34. वही, पृ. 25.

35 नागार्जुन - 'युगधारा' (भूमिका), पृ. 4 (1952).

36. नागार्जुन - 'तालाब की मछलियाँ', लोकायन सांस्कृतिकसंस्थान, भिण्ड, प्र.स. 1975, पृ. 67.

37. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 48.

38. शेरगंज गर्ग - 'स्वातंत्र्योत्तर कविता का वस्तुगत प्रतिप्रेक्ष्य', साहित्य भारती, दिल्ली, प्र. सं. 1972, पृ. 30.

39. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 50.

40. डॉ. चंद्रहास सिंह - 'नागार्जुन का काव्य', राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र सं. 1996, पृ.95.

41. श्री.विश्वम्भर मानव - 'नयी कविता नये कवि', पृ. 65.

42. आलोचना - अंक 56-57, 1981, पृ. 51.

43. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र. सं. 1998, पृ. 63.

-----x-----